सत्तर और अस्सी के दशक में बिहार के जातीय समीकरण में दलित

डॉ0 मो0 मरगूब रज़ा*

1967 के चुनाव के समय काँग्रेस के अन्दर चार गुट सक्रिय थे, राजा रामगढ़ के साथ मिलकर महामाया प्रसाद सिन्हा ने जनक्रांति दल की स्थापना की। 1967–1969 भारी उथल–पुथल और तनाव का दौर था। बिहार पर अकाल की काली छाया थी और चुनाव के पहले की राजनीति काँग्रेस के खिलाफ केन्द्रित हो रही थी। 1965 से ही स्थितियों के खराब होने का संकेत मिलने लगा था।

जाति की धुरी पर नाचनेवाली सत्ता–राजनीति की दृष्टि से 1967 के चुनाव का सबसे उल्लेखनीय पहलू यह रहा कि पहचान की 'परिधि' के बाजय 'केन्द्र' ही बदल गया। लोहिया की पार्टी संसोपा की अलग पहचान बनी। बिहार में लोहिया की 'जाति नीति' की सफलता ने 'परिधि' पर बंटी–बिखरी पड़ी पिछड़ी जातियों को पिछड़ाबाद के सूत्र में बांधकर उन्हें सत्ता–राजनीति का 'केन्द्र' बना दिया।

1967 में कर्पूरी ठाकुर, रामानन्द तिवारी, बसावन सिंह आदि समाजवाति नेता गैरकॉग्रेसवाद की जमीन पर पिछड़ावाद की राजनीति के बीहड़ रास्तों से सत्ता की मंजिल तक पहुँचानेवाले आकर्षक मील के पत्थर बने। ऐस मील–पत्थर, जिन्होंने तमाम पिछड़े समुदायों को साथ चलने को प्रेरित किया, साथ चलने के लिए विभिन्न पिछड़े समुदायों को आपसी विवाद व विरोध की बीच भी समझौता–समन्वय के लिए बाध्य किया। सो पहली बार बिहार विधानसभा में पिछड़ों की एकमुष्त संख्या–82 हो गयी। उसी चुनाव के बाद पहली बार पिछड़ी जाति का कोई सदस्य विधानसभा का अध्यक्ष बना। विधानसभा में अध्यक्ष की उँची कुर्सी पर आसीन होने वाले यह प्रथम 'पिछड़ा' थे– धनिक लाल मंडल।

चुनाव परिणाम से साफ था कि बिहार में राजनीतिक नेतृत्व के लिए अगड़ा बनाम अगड़ा का संघर्ष पतन के उस कगार पर था, जिसे एक धक्का देने भर की जरूरत थी लेकिन पिछड़ावाद की उस राजनीतिक ताकत का प्रकटीकरण नहीं हुआ था। जो बरसों से सत्ता पर काबिज अगड़ावाद को सिर्फ अपने बलबूते 'धकिया' देता। पहली संविद सरकार में काँग्रेस से निकलकर जनक्रान्ति दल बनाने वाले महामाया प्रसाद सिन्हा के मुख्यमंत्री बनने और कर्पुरी ठाकुर के उपमुख्यमंत्री बनने को इसी परिप्रेक्ष्य में समझा जा सकता है।

***Ph.D, इतिहास विभाग, बी.एन.एम.यू. मधेपुरा (बिहार)**

महामाया मंत्रिमंडल में सोलह कैबिनेट मंत्री और 17 राज्य मंत्री बनाए गये। उनमें पिछड़ी जाति के 5 कैबिनेट और 5 राज्य मंत्री बनाये गये–कर्पूरी ठाकुर, रामदेव महतो, बिन्देश्वरी प्रसाद मंडल, भोला प्रसाद सिंह और प्रेमलता राय कैबिनेट तथा उपेन्द्र नाथ वर्मा, मोहन लाल गुप्ता, बीपी0 जवाहर, श्यामसुन्दर और विष्णुध ारी लाल राज्यमंत्री। ऐसा पहली बार हुआ था।[1]

काँग्रेस की ओर से संयुक्त सरकार बनाने के लिए गोटी बिछाने ने रंग दिखाया। काँग्रेस ने 22 फरवरी 1968 को 'दलित' नेता भोला पासवान शास्त्री को मुख्यमंत्री बनाकर बिहार की सत्ता पर पुनः कब्जा करने की कोशिश की। शास्त्री बिहार के पहले दलित मुख्यमंत्री बने, जो अपनी सरकार को महज 95 दिनों तक चला सके।

उथल–पुथल के इस दौर में समाजिक परिवर्तन के संकेत मिलने शुरू हो गये थे। यह संकेत राजनीति और समाज में पिछड़ा उभारके रूप में चिन्हित हुआ। कॉग्रेस राजनीतिक व समाजिक स्तर पर कमजोर हुई। सत्ता पर कब्जा करने और कायम रखने के लिए उसका ब्राह्मण–दलित–मुसलमान के त्रिकोण में सुरक्षित 'वोट बैंक' का दिवाला पिटने लगा था। उसके समानान्तर सामाजवादी शक्तियों का राजनीतिक विकास और विस्तार हो रहा था। संगठन कॉग्रेस, लोकतांत्रिक कॉग्रेस जैसे संगठन अस्तित्व में आ गये थे, जो कॉग्रेस के खंडित चरित्र के प्रमाण जैसे थे। काँग्रेस में एक तरफ ब्राह्मण, भूमिहार और राजपुत लॉबियों की आपसी प्रतिद्वंद्विता बढ़ गयी थी और दूसरी तरफ उसके पिछड़े आधारों का क्षरण हो रहा था।

नक्सल आन्दोलन : दलित पिछड़े बने संघर्ष के नाम

राजनीतिक अस्थिरता व पिछड़ा उभार के इस दौर में बिहार में नक्सली उभार की धमक सुनाई पड़ने लगी। नक्सली आंदोलन ने बिहार के दबे और सताये हुए समुदायों को आकर्षित किया। आंदोलन के पहले चरण में मुसहरी, सुर्यगढ़ा, संथालपरगना में नक्सवादी सक्रिय हुए।[2]

1967 के बाद के तीन–चार वर्षो तक भारत की कम्युनिष्ट पार्टी (मार्क्सवादी–लेनिनवादी) ने पूर्णियॉ, दरभंगा, भागलपुर, मुंगेर तथा दक्षिण बिहार के हजारीबाग, पलामू आदि जिलों में काम–काज फैलाने की कोशिश की लेकिन उसे कोई उल्लेखनीय सफलता नहीं मिली।[3]

तत्कालीन मुख्यमंत्री दारोगा प्रसाद राय ने स्वीकार किया कि उत्तर बिहार में नक्सलवादी गतिविधियां बढ़ती जा रही हैं। कानू सन्याल के समर्थकों ने मुसहरी प्रखंड को अपना अड्डा बनाया किन्तु जय प्रकाश नारायण के प्रयत्नों के कारण वे उखड़ गये। 'मुख्यमंत्री ने कहा कि पिछले पन्द्रह दिनों में नक्सलवादियों द्वारा चार हत्याऐं की गयी, जबकि जनवरी 1970 से अगस्त 1970 तक 30 हत्याऐं हुई।

नक्सलवादी गतिविधियों के कारण मुंगेर, मुजफरपुर, दरभंगा, सिंहभूम, चम्पारण, जमशेदपुर, पटना, रांची, गया, सहरसा, हजारीबाग में 945 व्यक्ति गिरतार किये गये।[4]

1971 आते–आते सोन अंचल में नक्सली बयार का असर दिखाई पड़ने लगा। स्थानीय स्तर पर उत्पीड़ित समुदायों से सैकड़ो लोग खड़े हो गये। जगदीश प्रसाद (मास्टर साहब), बूटन राम, रामनरेश राम, रामेश्वर अहीर, नारायण कवि, गणेशी राम, विरदा मांझी सहित अनैकों अनाम दलित–पिछड़े कार्यकर्ता जमीनी संघर्ष के लिए स्थानीय नेतृत्व की कतार में आ गये। दिलचस्प बात यह है कि सत्यनारायण सिंह लेकिन उनके रहते पार्टी में कार्यकर्ताओं की फौज नहीं पैदा हो सकी। उनके किनारे होते ही स्थानीय दलित–पिछड़ा नेतृत्व उभरा तो भोजपुर और सोनपट्टी में नयी आंधी आ गयी।

चालीस के दशक में त्रिवेणी संघ का गढ़ और साठ के दशक का समाजवादियों का केन्द्र–शाहबाद–सत्तर के दशक में नक्सलवाद के केन्द्र में तब्दील हो गयां स्थानीय स्तर का दलित नेतृत्व सहार थाना के एकवारी गॉव से उभरा और भोजपुर की धरती पर अपनी पहचान बना गया। भोजपुर में नक्सली उभार के पहले जगदीश मास्टर साहब ने 'हरिजनिस्तान' की मांग लेकर जिला मुख्यालय आरा में 14 अप्रेल 70 को अम्बेडकर दिवस के अवसर पर जुलूस निकाला।[5]

1971 के बाद बहुत ही अल्प समय में भोजपुर के सहार, संदेश, पीरो, जगदीशपुर, गड़हनी के गॉव सुगबुगाने लगे। गॉवों में जमीन दखल, सामाजिक अत्याचार के खिलाफ दलित–पिछड़े गोलबंद होने लगे। भूस्वामियों पर हमले की शुरूआत हुई। दुसाध–हरिजनों के 'दखिनवारी' टोले राजनीति के केन्द्र बन गये।[6]

पुलिस से लड़ाई के साथ फर्जी मुठभेड़ों का सिलसिला भी शुरू हुआ। उसमें मारे जानेवाले अधिसंख्य नेता–कार्यकर्ता दलित–पिछड़े समुदायों के होते थे। उससे यह स्पष्ट हो गया कि अब तक जो दलित–पिछड़े सताये जा रहे थे, वे सशस्त्र प्रतिकार के लिए उठ खड़े हुए।[7]

और उसी दौरान भोजपुर के ग्रामीण अंचलों में 'वोट–कोर्ट मुर्दाबाद' का नारा गूंज उठा। केन्द्र की सत्ता पर विराजमान इंदिरा गाँधी के इशारे पर उठने–बैठने वाली बिहार कॉंग्रेस की स्थाई सरकार को 1974 में ऐतिहासिक 'छात्र आंदोलन' का सामना करना पड़ा। देश भर में पस्त पड़ी विपक्षी पार्टियों को बिहार आंदोलन के सहारे केन्द्र की सत्ता पर निशाना साध सकने की संभावनाऐं नजर आने लगी। जेपी के नेतृत्व में 'संपूर्ण क्रान्ति' की घोषणा से सिर्फ बिहार और अन्य राज्यों की 'कठपुतली' कॉंग्रेसी सरकारों के खिलाफ नहीं बल्कि उन कठपुतलियों को नचानेवाली और 1971 के चुनाव में सिरतोड़ बहुमत पाकर केन्द्र की सत्ता पर काबिज श्रीमती इंदिरा गाँधी के नेतृत्व के खिलाफ आवाज बुलंद होने लगी।

1975 महंगाई और भ्रष्टाचार आंदोलन का मुख्य मुद्दा था। चौहतर के बिहार आंदोलन ने राज्य में जारी सामाजिक आंदोलन की नक्सली प्रक्रिया को ढंक दिया, हालांकि आंदोलन ने व्यापक रूप से मध्यवर्ती जातियों के छात्र–युवाओं को राजनीतिक आंदोलन में उतार दिया।

वस्तुतः हुआ यह कि सामाजिक प्रश्नों पर केन्द्रित न होने के बावजूद इस आंदोलन ने समाज के अन्दर शक्ति संतुलन में हो रहे बदलाव की प्रक्रिया को गति प्रदान की। आंदोलन के दौरान पिछड़ी जातियों के बीच से नेतृत्व की स्वातंत्रयोत्तर पीढ़ी सामने आयी जिसने कालांतर में पुरानी पीढ़ी के नेताओं को धकेल कर पीछे कर दिया।

1977 के चुनाव में कॉंग्रेस का बिहार से सफाया हो गया। इसके उलट जनता पार्टी को 214 सीटें मिली। 22 जून 1977 को कर्पूरी ठाकुर मुख्यमंत्री बने। कर्पूरी ठाकुर मंत्रिमंडल ने 9 मार्च 1978 को अपनी बैठक में 1 अप्रेल से राज्य में पिछड़ी जातियों के लिए नौकरियों में आरक्षण लागू करने का फैसला किया। पिछड़ी जातियों को 8 प्रतिशत, अति पिछड़ी जातियों को 12 प्रतिशत, महिलाओं को 3 प्रतिशत तथा आर्थिक रूप से पिछड़े सवर्णो को 3 प्रतिशत आरक्षण दिया जाना था।

दरअसल 1970 में ही दारोगा राय की सरकार ने मुंगेरी लाल की अध्यक्षता में पिछड़ा वर्ग आयोग का गठन किया था, अनुशंसाओं पर कॉंग्रेस पार्टी का द्विज नेतृत्व बैठ रहा। 1977 में सत्ता हाथ में आते ही कर्पूरी ठाकुर ने पिछड़ों के लिए आरक्षण की घोषणा कर दी। सरकार और पार्टी के अन्दर और बाहर वर्षो से दबे 'बैकवर्ड बनाम फॉरवर्ड' के बीज फूट पड़े। उनके (कर्पूरी ठाकुर) मुख्यमंत्रित्वकाल में पिछड़ी जातियों को सम्मानजनक स्तर पर लाने के लिए जो विशेष अवसर या आरक्षण की सुविधान दी गयी, इसके कारण अधिकांश द्विज नाराज हो उठे।[8]

उंची जातियों के लोगों ने उसके लिए कर्पूरी ठाकुर को कभी माफ नहीं किया और उन्हें उसकी भारी कीमत भी चुकानी पड़ी।[9] कर्पूरी की सरकार 'पिछड़ी की सरकार' थी। उन्हें पार्टी के अन्दर भूमिहार जाति का समर्थन प्राप्त था। कर्पूरी ठाकुर ने 10 नवम्बर 1978 को पिछड़ों को नौकरियों में आरक्षण देने का फैसला किया। 'सवर्ण विधायकों को साथ' नहीं मिलने के कारण कर्पूरी ठाकुर विश्वासमत नहीं हासिल कर सके। कर्पूरी ठाकुर के हटने के बाद 30 अप्रेल 1979 को रामसुन्दर दास की सरकार बनी। यह सरकार हरिजन सरकार जरूर थी, लेकिन कंधा दास का था, पर ट्रिगर सवर्ण नेताओं के हाथ में था।

राम सुन्दर दास ने कैबिनेट में उच्च जातियों के मंत्रियों की संख्या को 29 प्रतिशत से 50 प्रतिशत कर दिया और पिछड़े समुदायों के मंत्रियों के 38 प्रतिशत

प्रतिनिधित्व को उलट कर 20 प्रतिशत कर दिया। पिछड़ों को आरक्षण के फैसले से 'अस्थिर सरकार से यह संकेत स्पष्ट होने लगा कि 1977 सत्ता पर वर्चस्व की पंरपरागत दृष्टि और रणनीति दोनों में परिवर्तन का नया मोड़ है। पिछड़ी जातियों ने जहां सत्ता पर उच्च जातियों के परंपरागत वर्चस्व को संख्याबल के आधार पर तोड़ना शुरू किया, वहीं अपने नेतृत्व के लिए उच्च जातियों के उस सहारे को चुनौति देने की रणनीति अपनायी। आरक्षण के फैसले और उसके बाद कर्पूरी ठाकुर के इस्तीफे ने पिछड़ा राजनीति की इस दृष्टि और दिशा का संकेत कर दिया। और छात्र. आंदोलन से निकले नयी पीढ़ी के नये नेतृत्व ने त्याग के बल पर सेवा के लिए रास्ता हासिल करने की परंपरागत सोच को ऐसे धक्के दिये कि पिछड़ी जातियों की पुरानी पीढ़ी के हाथ से नेतृत्व फिसलने लगा। पिछड़े समुदाय में भी पुराने नेताओं की साख खत्म होने लगी और नयी पीढ़ी के नये नेता सामने आने लगे।

मंडल आयोग का गठन

1977 में केन्द्र की सत्ता पर काबिज देश की प्रथम 'गैरकाँग्रेसी सरकार ने बैकवर्ड क्लासेज कमीशन' के गठन पर फैसला किया। यह फैसला' राष्ट्रीय राजनीति में पिछड़ावाद की भावी भूमिका का पहला कदम था। तत्कालीन प्रधानमंत्री मोरारजी भाई देसाई ने वीपी मंडल की अध्यक्षता में उक्त आयोग का गठन की घोषणा 20 दिसम्बर, 1978 को संसद में की आयोग के गठन की अधिसूचना 01 जनवरी, 1979 को जारी की गयी।

अंततः दिसम्बर 1980 में आयोग ने अपनी रिपोर्ट राष्ट्रपति को सौंपी।

यह स्पष्ट दिख गया कि काँग्रेस अपने राजनीतिक अस्तित्व का आधार ब्राहम्ण और राजपूत नेतृत्व में तलाश रही थी, जबकि निचले सतर पर काँग्रेस के जातिय आधारों का क्षरण हो रहा था। विधानसभा में पिछड़े विधायकों की संख्या लगातार बढ़ रही थी। काँग्रेस जहां अपने पुराने सवर्ण आधारों को खो रही थी वहीं पिछड़े आधारों में अपनी पैठ बनाने में बिल्कुल विफल साबित हो चुकी थी।

1967—1969 और 90 के चुनाव इस बात के गवाह हैं कि इसी दौर में पिछड़ों ने अपना प्रतिनिधित्व बढ़ाया। पिछड़ों की संख्या 1967 में 82 और 1969 में 94 जा पहुँची। उसके बाद के 20 वर्षो तक यानी चार चुनावों तक पिछड़ो के प्रतिनिधित्व क्रमशः 76, 92, 96 और 90 रहा।

उंची जाति के विधायकों की संख्या का घटना 1967 से ही शुरू हो गया था। 1967 में उनकी संख्या घटकर 122 हो गयी। 1972 में बढ़कर 136 हुई लेकिन उसके बाद क्रमशः 124, 120, 118 हो गयी—यानी क्रमीक ह्रास। 20 वर्षो के बीच का अंतर उपर से देखने से मामूली दिखाई पड़ता है, लेकिन अगले पांच वर्षो के दो चुनाव परिणामों ने स्पष्ट कर दिया कि यह क्रमिक ह्रास काँग्रेस के पत्ता साफ

होने का रास्ता था। 1990 में ऊंची जातियों के विधायकों की संख्या 105 हुई और 1995 के चुनाव में घट कर सिर्फ 56 हो गयी। यानी समाज में दबदबा रखने वाली अगड़ी जातियों की राजनीतिक शक्ति हाशिये पर आ गयी।

सामाजिक शक्ति और समीकरणों से 'डिक्टेट' होने वाली बिहारी राजनीति के इस दौर में लालू का पदार्पण हुआ। 80—85 में विधानसभा में वह 'बैंकबेंचर' थे, लेकिन कर्पूरी ठाकुर की अनुपस्थिति में वह नेता थे। लोकसभा चुनाव में कांग्रेस के खिलाफ विरोधी दल एक मंच पर आ गये। भ्रष्टाचार विरोध की हवा ने कांग्रेस को करारा झटका दिया। बिहारी में जनता दल को 31 सीटें मिली। चुनाव में कोई सामाजिक मुद्दा नहीं थ, लेकिन मध्यवर्ती जातियों को संख्यागत लिहाज से फायदा हुआ। बिहार में यह पहला मौका था, जब पिछड़ी मध्यवर्ती जातियों के लोकसभा सदस्यों की संख्या 18 जा पहुंची। इनमें अकेले यादवों की संख्या दस थी, उनमें लालू प्रसाद भी थे। पहली बार बिहार से लोकसभा के लिए चने जाने वाले पिछड़ी और अगली जाति के सदस्यों की संख्या 18—18 पर पहुंची।

1989 के चुनाव में पिछड़ी जातियों की सेख्या में 11 प्रतिशत का इजाफा हुआ। इस चुनाव से बिहार में जनता दल 'स्थापित' हुआ। केंद्र में वी0 पी0 सिंह की सरकार बनी। लोकसभा चुनाव की छाप बिहार विधानसभा चुनाव पर भी पड़ा। लोकसभा चुनाव की हवा 1992 के विधानसभा चुनावों में बरकरार रही। कांग्रेस बुरी तरह पराजित हुई। उसे मात्र 71 सीटें मिली, जबकि जनता दल को 121 सीटें। भाजपा को 39, भाकपा को 23, माकपा व आई0 पी0 एफ0 को क्रमशः 3, 2, 1, 1 सीट मिली। 30 निर्दलीय जीते।

विधानसभा में पिछड़ो की कुल संख्या 117 पहुंच गयी। पिछड़े गयी। पिछड़ों के प्रतिनिधित्व का यह नया रिकार्ड था, जो 1995 के चुनाव में टूटा और विधानसभा में पिछड़ों की संख्या बढ़कर 161 पहुंच गयी।[10]

8 मार्च, 1990 को लालू प्रसाद ने पटना के ऐतिहासिक गांधी मैदान में शपथ ग्रहण किया। मुख्यमंत्री बनने के बाद उनकी भूमिका निर्धारित होने की प्रक्रिया शुरू हुई। उनके पास देशज व ठेठ देहाती बोली का आकर्षण व भाषा संप्रेषणीयता थी। उनकी अपनी शैली थी और खास अंदाज व पहचान। मंचो पर वह कुर्सी लगाकर बैठते और भाषण देते।

इन घोषणाओं के साथ वह पिछड़े—दलितों को यह बताना नहीं भूलते कि यह उनका राज है, उनी सरकार है— 'अब रानी के पेट से राजा नहीं जनमता। अब राज मिलता है आपके वोट से, आपके बहुमत से। यह राज आपके वोट से ही बना है। अब आपका राज चलेगा रोब से ..... ढिलाई से नहीं ..... आपका राज चलेगा शान से।

गरीबों के लिए मुख्यमंत्री आवास भी खुल गया। गांव देहात से लोग आते गठरी–मोठरी के साथ और मुख्यमंत्री आवास की 'गणेश परिक्रमा' कर लोट जाते। वी0 पी0 सिंह सरकार ने 7 अगस्त 1990 को मंडल आयोग की सिफारिशों को लागू करने की घोषणा कर दी। लालू ने दोनों मुद्दों को मंत्र के रूप में इस्तेमाल किया। गांधी मैदान में 8 अक्टूबर 90 को मंडल रैली में लालू ने कहा कि चाहे धरती आसमान में समा जाये, पर मंडल पर समझौता नहीं होगा। यह स्वतः स्फूर्त रैली थी, जिसमें पिछड़ों का जनसैलाब उमड़ पड़ा।

मंडल की लड़ाई सड़को पर लड़ी जाने लगी। कांग्रेस के दूसरे दर्ज के नेताओं ने आरक्षण के खिलाफ खूब आंदोलन किया, जिसकी उलटी प्रतिक्रिया हुई। पिछड़े गोलबंद हुए। लालू को आरक्षण की लड़ाई का भारी फायदा हुआ। पहले मिसिर जी, त्रिपाठी जी0 सिंह जी, वर्मा जी सरकार में कलक्टर, एस0 पी0 होते थे– अब यादव जी, महतो जी, साह जी चाहते हैं आरक्षण। बिहार में यह दूसरा मौका था, जब आरक्षण मसले पर उत्तेजना और खून–खराबा हो रहा था। लालू ने कर्पूरी ठाकुर की तुलना में हमलावर रूख अख्तियार किया। बाढ़ में वी0 पी0 सिंह की सभा में जूते चप्पल फेंके गये तो आरा में लालू की सभा में उपद्रव हुआ। लालू ने आरक्षण के पक्ष में गांव–गांव का दौरा किया। उनके पास राज–सत्ता थी ही। सत्ता में हिस्सेदारी और नौकरी में आरक्षण की भूत ने पिछड़ों को उनके पक्ष में जबर्दस्त ढ़ंग से गोलबंद किया।

संदर्भ :–

1. 'हुमार' 16 नवंबर 95।
2. 'रामवृक्ष बेनीपुरी', संपादक शर्मा, पेज–342
3. 'श्री बाबू एंड जेपीः एलिगेशन–काउंटर एलिगेशन', एन0एम0पी0 श्रीवास्तव।
4. एक किताब ने खोली चार राज की बातें, 'श्री बाबू एंड जेपीः एलिगेशन–काउंटर एलिगेशन' की समीक्षा, सुरेन्द्र किशोर, हिन्दुस्तान, 7 मार्च 2003।
5. 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम', प्रसन्न कुमार चौधरी–श्रीकांत पेज–206
6. 'दिनमान', 23–29 सितंबर, 1990 जुगुनू शारदेय।
7. 'बिहार में सामाजिक परिवर्तन के कुछ आयाम' प्रसन्न कुमार चौधरी–श्रीकांत पेज–207।

8. 'अवकाश' शिवदेव नारायण राय, 16–31 अगस्त, 1979।
9. 'अवकाश' अप्रैल 79, सुरेन्द्र किशोर तथा कर्पूरी ठाकुर स्मृति अंक।
10. नवभारत टाइम्स, 10 मार्च 1990।

****